RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2004

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम् ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 4 सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

सर्वधर्म समभाव और हिंदी काव्य चिंतन

रामस्वरूप गढ़वाल
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

सर्वधर्म समभाव भारतीय संविधान का मूलभूत नैतिक आधार होने के साथ-साथ हिंदी काव्य-चिंतन की आत्मा भी है। संविधान राज्य को किसी एक धर्म से संबद्ध न होने और सभी धर्मों के प्रति समान आदर रखने का निर्देश देता है, वहीं हिंदी साहित्य इस विचार को मानवीय संवेदना और आध्यात्मिक उदारता के रूप में अभिव्यक्त करता है। अधिकार और कर्तव्य का पारस्परिक संबंध इस दर्शन को केवल विधिक नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व का स्वरूप प्रदान करता है, जहाँ अपनी आस्था में दृढ़ रहते हुए भी दूसरों की धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं के प्रति सम्मान रखना अनिवार्य माना गया है।

सर्वधर्म समभाव का तत्त्वदर्शन सर्वात्मवाद पर आधारित है, जिसके अनुसार समस्त प्राणी एक ही चेतना के विविध रूप हैं। इसी कारण किसी भी स्तर पर—धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक भावनाओं को आहत करना न केवल असंवैधानिक, बल्कि अमानवीय भी है। यह दर्शन सह-अस्तित्व, सद्भाव, सहयोग और शांतिपूर्ण जीवन की मूल्य-व्यवस्था को पुष्ट करता है, जो स्थायी विश्व-शांति और मानव-मंगल की आधारशिला है।

हिंदी काव्य-परंपरा में यह चेतना भक्ति आंदोलन से लेकर आधुनिक काल तक निरंतर प्रवाहित होती रही है। संत-काव्य में कर्मकांड और धार्मिक संकीर्णता का विरोध करते हुए मानव-एकता और प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया गया। सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं में ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग करुणा, समर्पण और लोकमंगल से जोड़ा गया। आधुनिक हिंदी काव्य में यह विचार मानवतावाद, राष्ट्रीय एकता और वैश्विक सद्भाव के रूप में विकसित हुआ, जहाँ धर्म विभाजन का नहीं, बल्कि जोड़ने का माध्यम बनता है।

महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सर्वधर्म समभाव इसी काव्यात्मक और दार्शनिक परंपरा का आधुनिक प्रतिरूप है, जिसमें मानव-प्रेम को दैवी प्रेम की पहली सीढ़ी माना गया है। इस जीवन-दर्शन में व्यक्ति और समाज दोनों के लिए शांति, नैतिकता और परस्पर सम्मान की अनंत संभावनाएँ निहित हैं। इस प्रकार सर्वधर्म समभाव हिंदी काव्य-चिंतन और भारतीय संवैधानिक चेतना का साझा मूल्य बनकर मानव-मात्र के कल्याण और विश्व-मंगल का मार्ग प्रशस्त करता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि गांधीजी का 'सर्वधर्म समभाव' कोई संकीर्ण धार्मिक अवधारणा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति से उद्भूत एक सकारात्मक, सार्वभौम और मानवीय मूल्य-व्यवस्था है। इसका मूल्य-स्रोत भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं की उस पुण्य-प्रशस्त धारा में निहित है, जिसने सहस्राब्दियों से विविध

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

मतों, विश्वासों और साधना-पद्धतियों को आत्मसात करते हुए समन्वय और उदारता को जीवन का आधार बनाया है। गांधीजी का यह विचार-सूत्र भारतीय श्रौत और श्रमण परंपराओं के साथ-साथ आग्नेय, आभीर और शक संस्कारों, तथा सूफीमत, इस्लाम और ईसायत की उदात्त एवं मानवीय चिंतन-धाराओं का समवेत रूप है। इसी कारण सर्वधर्म समभाव भारतीय सामासिक संस्कृति का संवाहक भी है और उसका समानार्थक भी, जो अनेकता में एकता की जीवंत अनुभूति कराता है।

वैदिक वाङ्मय से लेकर नीतिकाव्य तक भारतीय चिंतन निरंतर इस सत्य को उद्घाटित करता रहा है कि सत्य एक है, पर उसकी अभिव्यक्तियाँ अनेक हैं। 'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत:' और 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जैसे सूत्र मानवीय चेतना को सर्वदिशाओं से शुभ और कल्याणकारी विचारों के ग्रहण का संदेश देते हैं, वहीं 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' और 'यद् भद्रं तन्न आसुव:' के माध्यम से समस्त सृष्टि में एक ही तत्त्व की व्याप्ति और मंगल-भाव की प्रतिष्ठा होती है। भर्तृहरि का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय उदार चेतना का काव्यात्मक शिखर है, जहाँ अपना-पराया का भेद तिरोहित हो जाता है और संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार के रूप में प्रतिष्ठित होती है। 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:' का भाव मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक, नैतिक और भावनात्मक संबंध को पुष्ट करता है।

इसी परंपरा में वेदों के सामूहिक जीवन-सूत्र 'संगच्छध्वं संवदध्वं' और 'समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:' केवल बाह्य सामाजिक एकता का नहीं, बल्कि आंतरिक भावात्मक एकसूत्रता का भी प्रतिपादन करते हैं। यह एकता विचार, संकल्प, हृदय और मन की समता से उत्पन्न होती है, जो किसी भी स्थायी सामाजिक समरसता की आधारशिला है। ' ? सहना ववतु' की प्रार्थना सहअस्तित्व, सहकार्य और परस्पर अविद्वेष की उसी चेतना को आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करती है। अथर्ववेद का सूत्र, जिसमें समान अन्न-भाग और समान जीवन-बंधन की बात कही गई है, सामाजिक समता और सहयोग की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

एकीकरण की भावना भारतीय, विशेषत: आर्य जीवन-दृष्टि में आदिकाल से अंतर्निहित रही है। वैदिक समाज की चेतना का मूल लक्ष्य परस्पर भेदभाव का उच्छेद कर सामूहिक एकता की स्थापना था। इसी कारण वे 'मैं' और 'तू' के द्वैत को मिटाने के लिए परम सत्ता से प्रार्थना करते रहे, ताकि व्यक्तिगत अहं का लोप होकर सामूहिक चेतना का उदय हो सके। अग्नि से की गई यह कामना केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित नहीं थी, बल्कि सामाजिक और नैतिक जीवन में आत्मीयता, समता और परस्पर समर्पण की आकांक्षा का प्रतीक थी।

अनेकता में एकता की यह साधना ही भारतीय संस्कृति की सनातन शक्ति है, जिसने उसे कालजयी, अमर और अजर बनाया है। भिन्न-भिन्न जातियाँ, भाषाएँ, आस्थाएँ और जीवन-पद्धतियाँ होने के बावजूद एक सांस्कृतिक सूत्र में बँधे रहने की प्रवृत्ति भारतीय चेतना का स्थायी गुण रही है। इसी समन्वयवादी परंपरा ने भारतीय समाज को विभाजन के संकटों से उबारते हुए निरंतर नवीन ऊर्जा प्रदान की है।

कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर का कथन इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक यथार्थ को काव्यात्मक ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करता है। उनके अनुसार आर्य, अनार्य, द्राविड़, चीनी, शक, हूण, पठान और मोगल जैसे विविध समुदाय भारतभूमि पर आकर एक ही देह में लीन हो गए। यह कथन भारतीय संस्कृति की उस विराट आत्मा का सशक्त उद्घाटन है, जो विविधता को स्वीकार कर उसे एकत्व में रूपांतरित कर देती है। इस प्रकार

एकीकरण की भावना केवल वैदिक आदर्श नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक अस्तित्व की मूल आत्मा है, जिसने सर्वधर्म समभाव, समरसता और विश्व-बंधुत्व को व्यवहारिक जीवन का अंग बनाया है।

'सर्वधर्म समभाव' की पुण्य-प्रशस्त परंपरा भारतीय साहित्य में किसी एक काल या एक भाषा तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की वैचारिक भूमि से विकसित होकर हिंदी काव्य में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित, पल्लवित और पुष्पित हुई है। इन मूल स्रोतों से अनुप्राणित होकर सर्वधर्म समभाव ने राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में बहुआयामी स्वरूप ग्रहण किया। इस मूल्य-व्यवस्था के दो स्पष्ट पक्ष दिखाई देते हैं—एक वह जो मानवीय चेतना को उदात्त बनाता है और दूसरा वह जो आडंबर, संकीर्णता और पाखंड के रूप में इसका विरोधी है। हिंदी काव्य-परंपरा ने सदैव पहले पक्ष का समर्थन किया है और दूसरे का निर्भीक खंडन किया है।

आदिकालीन जैन साहित्य में सर्वधर्म समभाव की यह उदार और विवेकपूर्ण दृष्टि विशेष रूप से मुखर है। स्वयंभूदेव, आचार्य देवसेन, पुष्पदंत और मुनिरामसिंह जैसे कवियों की रचनाओं में परमार्थ की प्रतिष्ठा और बाह्याचार के निषेध का स्पष्ट स्वर सुनाई देता है। मुनिरामसिंह के 'पाहुड दोहा' में पंडिताई के मिथ्या गर्व और ग्रंथज्ञान की सीमाओं पर तीखा प्रहार किया गया है। यहाँ सर्वधर्म समभाव का सकारात्मक पक्ष परमार्थ-बोध के रूप में और नकारात्मक पक्ष पाखंड-खंडन के रूप में प्रकट होता है। इसी क्रम में बाह्य संन्यास और देहगत आडंबर की आलोचना करते हुए अंत:करण की शुद्धि को ही वास्तविक साधना माना गया है। यह दृष्टि धर्म को कर्मकांड से मुक्त कर मानवीय चेतना की गहराइयों से जोड़ती है।

नाथ संप्रदाय में यह समन्वयवादी चेतना और अधिक व्यापक तथा प्रखर रूप में दिखाई देती है। सिद्ध परंपरा से विकसित यह संप्रदाय बौद्ध सहजयान की उदारता और योग की आंतरिक साधना को साथ लेकर चलता है। गुरु गोरखनाथ और उनके अनुयायियों की वाणी में इंद्रिय-निग्रह, मन-साधना और उदात्त भावनाओं का समन्वय दिखाई देता है। 'गोरखबानी' में भोग को रोग बताकर चेतना को जागृत करने का आग्रह किया गया है, जिससे मनुष्य बाह्य सुखों के आकर्षण से ऊपर उठ सके। मन-साधना से संबंधित पदों में प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से आंतरिक अनुशासन और आत्मबोध की प्रक्रिया को उकेरा गया है।

नाथ साहित्य में सर्वधर्म समभाव का सबसे सशक्त रूप उदार भावनाओं की प्रतिष्ठा में दिखाई देता है, जहाँ मन को ही शक्ति और शिव दोनों का स्वरूप माना गया है। यह दृष्टि द्वैत को मिटाकर चेतना की एकता पर बल देती है। मत्स्येंद्रनाथ द्वारा प्रतिपादित 'अपरिग्रह' का सिद्धांत भोग-लिप्सा और संग्रह-वृत्ति के विरुद्ध है और संयमपूर्ण जीवन को ही योग का आधार मानता है। चर्पटनाथ की वाणी में संयम और अहिंसा का अत्यंत करुण और मानवीय स्वर मिलता है, जिसमें दृष्टि, वाणी और कर्म—तीनों स्तरों पर सावधानी और संवेदनशीलता का आग्रह है।

नाथपंथियों की यह घोषणा कि हिंदू और मुसलमान दोनों ईश्वर के ही सेवक हैं और योगी उनके बीच कोई भेद नहीं करता, सर्वधर्म समभाव का सबसे स्पष्ट और साहसिक उद्घोष है। यहाँ धर्म का अर्थ संप्रदाय नहीं, बल्कि मानव-मूल्य है। इस प्रकार आदिकालीन हिंदी काव्य में सर्वधर्म समभाव केवल सहिष्णुता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह आंतरिक शुद्धि, नैतिक संयम, अहिंसा और मानवीय एकता का व्यापक जीवन-दर्शन बन जाता है। यही वह सकारात्मक साधक तत्त्व है, जिसने हिंदी काव्य को भारतीय सामासिक संस्कृति का सशक्त संवाहक बनाया और सर्वधर्म समभाव को एक जीवंत, क्रियाशील और सार्वभौम मूल्य-

व्यवस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया।

आदिकालीन हिंदी काव्य में सर्वधर्म समभाव की चेतना केवल वैराग्य और साधना तक सीमित नहीं रही, बल्कि शृंगार, प्रेम और मनोरंजन जैसे लौकिक अनुभूतियों के क्षेत्र में भी समान रूप से अभिव्यक्त हुई है। अब्दुर्रहमान, बब्बर, अमीर खुसरो और मुल्लादाऊद जैसे कवियों की रचनाएँ इस तथ्य की साक्षी हैं कि भिन्न धार्मिक पृष्ठभूमि होने पर भी काव्य-चेतना भारतीय सांस्कृतिक समन्वय की विराट धारा में अवगाहित रही। विशेषत: अब्दुर्रहमान, जो संवत् 1067 विक्रम में मुल्तान निवासी एक जुलाहा मुस्लिम परिवार में जन्मे थे, उनकी वाणी में हिंदू दार्शनिक संस्कारों का गहन और आत्मीय समावेश दिखाई देता है। उनकी कविता में 'सर्वे खल्विदं ब्रह्म' का तत्त्व प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत होता है, जहाँ ब्रह्म की अनुभूति इंद्रियों की सीमा से परे, आंतरिक बोध के रूप में प्रतिष्ठित होती है। यह दृष्टि धर्म की सीमाओं को लाँघकर आध्यात्मिक एकत्व की स्थापना करती है।

भक्तिकालीन काव्य इस समन्वयवादी चेतना का सर्वोच्च उत्कर्ष प्रस्तुत करता है, इसलिए सर्वधर्म समभाव की दृष्टि से इसे हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल के संत, सूफी, कृष्ण और राम काव्य में धर्म संप्रदाय नहीं, बल्कि प्रेम, भक्ति और मानवीय करुणा का रूप ग्रहण करता है। भारतीय सांस्कृतिक एकता की इस परंपरा में शंकराचार्य, रामानुज, रामानंद और चैतन्य महाप्रभु का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। रामानंद को उत्तर और दक्षिण भारत की भक्ति-परंपराओं के बीच सेतु मानकर उनकी भूमिका को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है, क्योंकि उन्होंने भक्ति को जाति, वर्ग और संप्रदाय की सीमाओं से मुक्त किया।

रामानंद की परंपरा में विकसित निर्गुण संत-काव्य को कबीरदास ने व्यापक सामाजिक और वैचारिक आधार प्रदान किया। कबीर के साथ नानक, दादू, रैदास, रज्जब, पलटू और सुंदरदास जैसे संतों की वाणी सर्वधर्म समभाव की सच्ची साधना बन गई। इन संतों ने जहाँ एक ओर प्रेम, समता और मानव-मात्र की गरिमा को प्रतिष्ठित किया, वहीं दूसरी ओर जाति-पाँति, कर्मकांड, धार्मिक आडंबर और संकीर्णता जैसे नकारात्मक तत्त्वों पर तीव्र और निर्भीक प्रहार भी किए। इस प्रकार संत-काव्य में सर्वधर्म समभाव केवल सहिष्णुता नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और आध्यात्मिक समता का घोष बन जाता है।

हिंदी संत-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें समानता की मूल संवेदना सर्वत्र व्याप्त है। यही संवेदना सर्वधर्म समभाव का प्राण-तत्त्व है, जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है और ईश्वर को मानवीय प्रेम के माध्यम से उपलब्ध कराती है। कबीर की यह उद्घोषणा कि ईश्वर जाति-पाँति नहीं पूछता और जो उसे भजता है वही उसका अपना होता है, इस समन्वयवादी चेतना की सर्वाधिक सशक्त और क्रांतिकारी अभिव्यक्ति है। इस प्रकार आदिकालीन और भक्तिकालीन हिंदी काव्य में सर्वधर्म समभाव भारतीय संस्कृति की उस जीवंत आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित होता है, जो विविधता को स्वीकार कर उसे एकता में रूपांतरित करने की अद्भुत क्षमता रखती है।

कबीरदास के काव्य में परमसत्ता की एकता और हिंदू-मुसलमान की समानता सर्वधर्म समभाव का केन्द्रीय और सकारात्मक तत्त्व है। उन्होंने राम और रहीम के नाम पर होने वाले संघर्षों पर तीखा व्यंग्य करते हुए स्पष्ट किया कि नाम और संप्रदाय मनुष्य को बाँटते हैं, जबकि सत्य एक है। पूजा और नमाज़, मंदिर और मस्जिद जैसे भेद बाह्य हैं; जैसे एक ही सोने से बने आभूषणों में तत्त्वत: कोई भिन्नता नहीं होती,

वैसे ही साधना-पद्धतियों में भी मूलत: एक ही चेतना कार्यरत है। कबीर के अनुसार ब्रह्मा, महादेव और मुहम्मद अलग-अलग नाम नहीं, बल्कि एक ही परमसत्ता के विविध बोध हैं।

कबीर ने सूफियों से प्रेम, वेदांत से अद्वैत, इस्लाम से एकेश्वरवाद और वैष्णव परंपरा से अहिंसा को ग्रहण कर एक सार्वभौम मानवधर्म की प्रतिष्ठा की। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस समन्वय को 'द्वैताद्वैतवाद विलक्षण समत्ववाद' कहा है। संत परंपरा में शास्त्र और संप्रदाय से अधिक महत्त्व प्रेम को दिया गया है, क्योंकि वही सर्वधर्म समभाव का प्राण-तत्त्व है। गुरु नानक देव की वाणी में भी एक ही नूर से समस्त जगत की उत्पत्ति का भाव इसी समानता-बोध को पुष्ट करता है।

इस समभाव की अनुभूति के लिए हृदय-दर्पण का निर्मल होना आवश्यक है; स्वार्थ और अहंकार ही धार्मिक भेदभाव के मूल कारण हैं। संत दादू दयाल और महात्मा गांधी दोनों ने इस सत्य को रेखांकित किया कि सब धर्मों के प्रति समभाव और अहिंसा से ही व्यापक मानवीय दृष्टि विकसित होती है। इस प्रकार प्रेम, अहिंसा और आत्मिक एकता पर आधारित संत-चिंतन सर्वधर्म समभाव का संक्षिप्त किंतु सुदृढ़ दर्शन प्रस्तुत करता है।

संत-काव्य में अहिंसा, परस्पर प्रेम, परमसत्ता की एकता, सभी धर्मों और संप्रदायों के प्रति समदृष्टि तथा सामाजिक समानता का निरंतर और सशक्त प्रतिपादन हुआ है। इसके साथ-साथ संत कवियों ने बाह्याडंबर, कर्मकांड, अनैतिकता, अहंकार, अलगाववाद, अनुदारता और अर्थ-लोलुपता जैसे उन तत्त्वों पर भी तीखे प्रहार किए हैं, जो सर्वधर्म समभाव में बाधक बनते हैं। संत पलटू की पंक्तियाँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि स्वर्ग-नरक या अलग-अलग धार्मिक धारणाओं का द्वैत मनुष्य को सत्य से दूर करता है।

जायसी का काव्य अनेकता में एकता और सांप्रदायिक सद्भाव का सशक्त प्रतीक है। उन्होंने समस्त मानवता को एक ही मिट्टी से बने भिन्न-भिन्न रूपों वाले पात्रों के समान माना और हिंदू-मुसलमान को एक ही ब्रह्म की संतान के रूप में देखा। उनके अनुसार ईश्वर तक पहुँचने के मार्ग अनेक हो सकते हैं, पर लक्ष्य एक ही है, और जो अपने मार्ग में संतोष और प्रेम रखता है, वही सत्य को प्राप्त करता है।

सूफी परंपरा भी इसी समन्वयवादी चेतना की वाहक रही है। निज़ामुद्दीन औलिया का यह कथन कि प्रत्येक समुदाय का अपना मार्ग और अपनी उपासना-पद्धति होती है, धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक सहबोध का उत्कृष्ट उदाहरण है। जायसी के लिए मानव-मात्र के प्रति प्रेम ही जीवन का सर्वोच्च तत्त्व है। उनका विश्वास था कि प्रेम ही सभी धर्मों का सार है और वही मनुष्य को साधारण मिट्टी से उठाकर पूर्ण और सार्थक मानव बनाता है। इस प्रकार संत और सूफी काव्य में प्रेम, समता और सहअस्तित्व पर आधारित सर्वधर्म समभाव का आदर्श अत्यंत सहज और प्रभावशाली रूप में प्रतिष्ठित हुआ है।

भारतीय सूफी महाकवि जायसी के तत्त्व-दर्शन में सूफी मत के वजूदिया सिद्धांत, इस्लाम के एकेश्वरवाद तथा भारतीय श्रौत और श्रमण परंपराओं का अत्यंत सहृदय और संतुलित समन्वय दिखाई देता है। इस समन्वय के माध्यम से जायसी ने भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति अपनी गहरी निष्ठा और उदार दृष्टि का परिचय दिया है। वेदों के प्रति उनकी अटूट आस्था इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि वे वेद-पंथ से विमुख होने को भ्रांति का कारण मानते हैं। 'पद्मावत' की नायिका पद्मावती को चारों वेदों की पारंगत विदुषी के रूप में चित्रित करना भी जायसी की वैदिक परंपरा के प्रति सम्मानपूर्ण भावना को प्रकट करता

है।

जायसी के काव्य में दया और क्षमा सर्वधर्म समभाव के अनिवार्य साधक तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। डॉ. मदान का यह कथन कि जाति से मुसलमान होते हुए भी जायसी कर्म से वैष्णव थे, उनके मानवीय और नैतिक जीवन-दर्शन को स्पष्ट करता है। अहिंसा को उन्होंने जीवन का मूल मूल्य माना, जो महावीर, बुद्ध, ईसा और गांधी जैसे महापुरुषों की परंपरा से जुड़ा हुआ है। गांधी के अनुसार अहिंसा के बिना सत्य का साक्षात्कार संभव नहीं, मनु के मत में अहिंसा से इंद्रिय-निग्रह होता है और बुद्ध के अनुसार बैर का शमन केवल अबैर से ही हो सकता है। इस प्रकार अहिंसा धार्मिक विविधता के बीच समानता स्थापित करने का अपरिहार्य साधन बन जाती है।

जायसी केवल विचार की शुद्धता नहीं, बल्कि आदर्शों के आचरण पर भी बल देते हैं। वे विचार और व्यवहार की एकता के प्रबल समर्थक हैं और कथनी-करनी के अंतर पर तीव्र प्रहार करते हैं। पापपूर्ण आचरण के साथ धार्मिक ग्रंथों का प्रदर्शन या दूसरों को उपदेश देते हुए स्वयं असत्य का आचरण करना, उनके लिए घोर पाखंड है। इस प्रकार जायसी का काव्य प्रेम, अहिंसा, दया और आचरण की शुद्धता के माध्यम से सर्वधर्म समभाव को एक जीवंत, नैतिक और मानवीय मूल्य-व्यवस्था के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

सगुण भक्ति की रामकाव्य परंपरा के प्रतिनिधि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास हैं। उनके 'रामचरितमानस' के नायक श्रीराम प्रेमप्रधान, शीलवान, शक्तिसंपन्न और सौहार्द से परिपूर्ण आदर्श पुरुष हैं, जिनके लिए केवल प्रेम ही सर्वोपरि है। तुलसीदास ने श्रीराम के चरित्र के माध्यम से उदारता, करुणा और मानवीय संवेदना को प्रतिष्ठित किया है। निषादराज से श्रीराम का स्नेह जातीय एकता और सामाजिक समता का सजीव उदाहरण है, जहाँ नीच-ऊँच का भेद प्रेम में विलीन हो जाता है।

रामराज्य का चित्रण भी तुलसी की समन्वयवादी दृष्टि को उजागर करता है, जहाँ वैर-विरोध का स्थान नहीं है और समस्त प्रजा प्रेम और सद्भाव के साथ जीवन व्यतीत करती है। श्रीराम द्वारा अंगद को दिया गया सर्वहित और सर्वव्यापक प्रेम का उपदेश इस तथ्य को पुष्ट करता है कि सच्चा धर्म समरसता और लोकमंगल में निहित है। तुलसीदास की सर्वात्मवादी चेतना में समस्त जड़-चेतन जगत 'सियाराममय' है, इसलिए वे सम्पूर्ण सृष्टि को प्रणाम करते हैं।

तुलसीदास के काव्य का मूल उद्देश्य मानव-मात्र का कल्याण है। उनकी रामकथा 'सुरसरी' की भाँति सबका हित करने वाली है। सर्वधर्म समभाव की इसी उदार भावना के अंतर्गत वे भेदभाव, अलगाव, संकीर्ण स्वार्थ और सांप्रदायिकता को माया मानते हैं, जो मनुष्य को सत्य और प्रेम से विमुख कर देती है। इस प्रकार तुलसीदास का रामकाव्य प्रेम, समता और सर्वहित के माध्यम से सर्वधर्म समभाव का उत्कृष्ट और प्रभावशाली प्रतिपादन करता है।

तुलसीदास आदर्श और आचरण की एकता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने विचार और व्यवहार की विसंगति पर तीखा प्रहार करते हुए ऐसे लोगों की निंदा की है जो वेदमार्ग छोड़कर कपट और आडंबर का आचरण करते हैं। उनके लिए सच्चा धर्म आचरण में प्रकट होता है, न कि बाह्य प्रदर्शन में। इसी दृष्टि से तुलसीदास पर-पीड़ा को अधमाई और परहित को सर्वोच्च तथा सार्वभौम धर्म मानते हैं, जहाँ मानव-मात्र के

कल्याण को ही जीवन का परम लक्ष्य स्वीकार किया गया है।

तुलसी का काव्य सर्वधर्म समभाव और मानवतावादी मूल्यों से सर्वत्र अनुप्राणित है। 'रामचरितमानस' सकारात्मक और नकारात्मक जीवन-दृष्टियों के संघर्ष का महाकाव्य है, जिसमें विनय, करुणा, प्रेम और प्रकाश की विजय दिखाई देती है, जबकि अहंकार, मिथ्या आडंबर और अज्ञान पराजित होते हैं। यह ग्रंथ मानवीय एकता और लोकमंगल की भावना का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करता है।

सर्वधर्म समभाव की इसी उदात्त परंपरा में अब्दुर्रहीम खानखाना का यह कथन विशेष महत्त्व रखता है कि 'रामचरितमानस' हिंदुओं के लिए वेदतुल्य और मुसलमानों के लिए प्रकट कुरान के समान है। इसी प्रकार सैयद अब्राहीम रसखान, शेखरंगरेज़न और दरिया साहिब जैसे मुस्लिम संतों की राम-भक्ति यह सिद्ध करती है कि श्रीराम और तुलसी का काव्य संप्रदायों की सीमाओं से ऊपर उठकर सार्वभौम मानवीय आस्था का केंद्र बन गया है। इस प्रकार तुलसीदास की काव्य-परंपरा सर्वधर्म समभाव की एक सशक्त, जीवंत और अनुकरणीय अभिव्यक्ति है।

आधुनिक हिंदी काव्य में सुधारवादी आंदोलनों के प्रभाव से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक नव-चेतना का उदय हुआ, जिसने काव्य-दृष्टि को भी व्यापक और मानवीय बनाया। इस काल के अनेक कवियों ने धार्मिक सद्भाव और समभाव की भावना से प्रेरित होकर सर्वधर्म समभाव के मार्ग में आने वाले नकारात्मक तत्त्वों—जैसे मिथ्याडंबर, दंभ, द्रोह, फूट और अंध परंपराओं—का स्पष्ट खंडन किया और प्रेम, एकता तथा परस्पर सहयोग जैसे सकारात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

कवि प्रेमघन ने अपने काव्य में संकीर्णता, आत्मश्लाघा और झूठे आडंबर पर तीखा प्रहार करते हुए यह संकेत दिया कि ऐसे आचरण से समाज और सांस्कृतिक परंपरा दोनों लज्जित होते हैं। नए-नए मतों और निरर्थक विवादों की आलोचना के साथ उन्होंने अतीत की कटुताओं को भूलकर भाईचारे और प्रेम के सूत्र में बँधने का संदेश दिया। उनके काव्य में सर्वधर्म समभाव का सार यह है कि धर्मों के सत्य-सिद्धांत एक हैं और उपासना-पद्धतियों का भेद वैर या विस्तार का कारण नहीं बनना चाहिए।

युगप्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र की काव्य-दृष्टि में भी प्रेम ही धर्म का मूल तत्त्व है। उनके अनुसार ईश्वर मंदिर, पूजा या बाह्य आडंबर में नहीं, बल्कि प्रेम की डोर से बँधे हुए हृदय में निवास करता है। इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्य में प्रेम, समता और सद्भाव को केंद्र में रखकर सर्वधर्म समभाव की भावना को नई सामाजिक चेतना के साथ सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया गया है, जो मानव-एकता और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का मार्ग प्रशस्त करती है।

आधुनिक हिंदी-काव्य के द्वितीय चरण, द्विवेदी काल में गांधीजी के सर्वधर्म समभाव और सामाजिक समानता के उदात्त दर्शन का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भिन्नताओं में एकता, बैर के स्थान पर बोध और प्रेम की प्रतिष्ठा का संदेश दिया तथा भारत को समता और सर्वस्वीकृति के मंदिर के रूप में चित्रित किया, जहाँ राम, रहीम, बुद्ध और ईसा सभी समान आदर के पात्र हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के अनुसार धर्म मानव को विभाजित नहीं, बल्कि जोड़ने वाला जीवनदायी सूत्र है, जो टूटे संबंधों को पुनः संयोजित करता है। इस सांस्कृतिक नवचेतना के निर्माण में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, विवेकानंद, ऐनी बेसेंट, श्री अरविंद और गांधीजी जैसे विचारकों का ऐतिहासिक

योगदान रहा, जिसने द्विवेदीकालीन काव्य को मानवतावादी और समन्वयशील दृष्टि प्रदान की।

आधुनिक हिंदी-काव्य की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में सांस्कृतिक नवजागरण की स्पष्ट प्रतिध्वनि मिलती है और 'सर्वधर्म समभाव' के संदर्भ में इसकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। इस धारा में हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह दिनकर और शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय मूल्यों को स्वर दिया। छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि—प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा—ने भी 'सर्वात्मवाद' के माध्यम से सर्वधर्म समभाव को गहराई प्रदान की। आचार्य नगेंद्र के अनुसार छायावादी काव्य की समता-चेतना भक्तिकाल के समकक्ष है। महादेवी वर्मा ने समस्त सृष्टि में एक ही संवेदना और मूल्य की अनुभूति व्यक्त की, जो इस दर्शन का मूल है। गांधीजी की अहिंसा-प्रधान प्रेमदृष्टि को सियारामशरण गुप्त ने काव्य में प्रतिपादित करते हुए स्पष्ट किया कि हिंसा का एकमात्र उत्तर अहिंसा है। इस प्रकार आधुनिक हिंदी-काव्य में सर्वधर्म समभाव मानवता, प्रेम और समरसता के रूप में सशक्त रूप से प्रतिष्ठित हुआ है।

अहिंसा केवल शांति की साधना नहीं, बल्कि समता और मानव-सद्भाव का भी प्रमुख साधन है। दिनकर की पंक्तियों में 'शत्रु हो कोई नहीं हो आत्मसात् संसार। पुत्र सा पशु-पक्षियों को भी कर सकूँ प्यार।।' स्पष्ट है कि अहिंसा के माध्यम से मनुष्य केवल दूसरों के प्रति प्रेम और करुणा नहीं दिखाता, बल्कि अपने अंत:करण को भी शुद्ध और समरस बनाए रखता है। वह मानते हैं कि शत्रु, पशु-पक्षी और समस्त सृष्टि को भी प्रेमपूर्ण दृष्टि से अपनाया जा सकता है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा संकीर्ण स्वार्थ, सांप्रदायिकता, आतंक और हिंसा का सबसे प्रभावी विरोधी अस्त्र है। यह केवल प्रतिरोध नहीं, बल्कि प्रेम और करुणा से प्रेरित सक्रिय शक्ति है, जो समाज में सर्वधर्म समभाव और सार्वभौम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

सुमित्रानंदन पंत ने प्रेम और अहिंसा को अंतत: विजयकारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार प्रेम नित्य ज्योति-सा दीप्तिमान है, और इसका फैलाव हिंसा के अंधकार का स्वयं नाश करता है। यही कारण है कि प्रेम और अहिंसा सर्वधर्म समभाव की अनिवार्य शर्तें हैं। मानव की मूल भावनाएँ, आकांक्षाएँ और सुख-दु:ख की प्रतिक्रियाएँ सभी में समान हैं। हिंसा, लोभ और पाखंड जैसी दानवी वृत्तियाँ इस समानता और मानवता को नष्ट कर देती हैं।

दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' में मनुष्य की इन नकारात्मक प्रवृत्तियों पर तीव्र प्रहार है। उन्होंने ज्ञान और मानवीय चेतना के नाम पर हो रहे अत्याचार, वासना और छल-कपट को घोर अपमान बताया है। इसी प्रकार शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने सांप्रदायिक अभिमान, हिंसा और बर्बरता का व्यंग्य किया, जिसमें निर्दोष बच्चों और कमजोरों पर हो रहे अत्याचार का स्पष्ट चित्रण है। उनके काव्य में यह चेतावनी निहित है कि हिंसा और संकीर्णता का इतिहास केवल विनाश और दु:ख का बीज बोता है, जबकि प्रेम और अहिंसा से समाज में स्थायी शांति, समानता और सर्वधर्म समभाव का निर्माण संभव है।

गांधीजी पापी व्यक्ति से नहीं, बल्कि पाप और अधर्म से घृणा करते थे। उनके दृष्टिकोण में मनुष्य का मूल्य उसके मनुष्यत्व और नैतिक चेतना में निहित है। यही विचार 'चरैवेति, चरैवेति-कृणवंतोविश्वम् आर्यम' के माध्यम से सार्वभौम मानवीय संदेश के रूप में प्रस्तुत होता है। महाकवि सुमित्रानंदन पंत ने इस पुण्य-परंपरा को अपने काव्य में इसी दृष्टि से व्यक्त किया है, जिसमें सभी राष्ट्र, मानव और कर्मों के

माध्यम से एक संयुक्त विश्व का निर्माण हो, और नव मानवता का आदर्श स्थापित हो।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में पृथ्वी को स्वर्ग में परिवर्तित करने के उद्देश्य को प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार राम का अवतरण इसी पुण्यतत्त्व की चेतना के लिए हुआ—मर्यादा और जीवन की रक्षा, प्रलय से बचाना तथा भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए। गांधीजी ने भी अपनी प्रार्थना सभाओं में सर्वधर्म समभाव और सार्वभौम सद्भाव का आदर्श स्थापित किया, जैसे 'रघुपति राघव राजा राम' और 'वैष्णव जन तो तेने कहीये' में स्पष्ट है।

विश्वबंधुत्व और समानता के मूल मंत्र को हरिवंशराय बच्चन ने अपने छंदों में उजागर किया, जहाँ भले ही देश, वेश और रंग अलग हों, मानवता में कोई भेद नहीं होना चाहिए। गांधीजी का 'सर्वधर्म समभाव' का विचार और उनका दर्शन आज भी विश्वशांति, मैत्री और समग्र मानवकल्याण के लिए आवश्यक आधार हैं। उनके विचार इस बात की चेतना देते हैं कि मानव को अपनी नैतिक चेतना और प्रेम-आधारित दृष्टि में ढालना ही विश्व की सच्ची उन्नति का मार्ग है।

निष्कर्षत: सर्वधर्म समभाव का मूल तत्त्व सर्वात्मवाद, समानता, प्रेम और अहिंसा है। गांधीजी ने इसे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अपनाया और पाप से घृणा, पापी से नहीं, का संदेश दिया। हिंदी काव्य में यह दृष्टि प्राचीन काल से मौजूद रही। जैन, नाथ और भक्ति-संत साहित्य ने प्रेम, अहिंसा, संयम और उदारता को साधक तथा बाह्याडंबर, पाखंड और संकीर्णता को बाधक तत्व माना।

कबीर, तुलसीदास, जायसी, रसखान ने धर्म, जाति और संप्रदाय के भेद भूलकर मानवता, प्रेम और सामाजिक समानता का संदेश दिया। आधुनिक हिंदी काव्य में भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, सुमित्रानंदन पंत, शिवमंगल सिंह सुमन ने सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय संदर्भों में सर्वधर्म समभाव, अहिंसा और सार्वभौम सद्भाव का प्रचार किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *भारतमुनि, नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1956*
2. *सरंगदेव, संगीतरत्नाकर, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1984*
3. *महात्मा गांधी, सर्वधर्म समभाव सम्बन्धी विचार, नयी दिल्ली: प्रकाशन विभाग, 1947*
4. *भर्तृहरि, नीतिशतक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1980*
5. *मुनिरामसिंह, पाहुड दोहा, जैन साहित्य संग्रह, जयपुर: प्रकाशन समिति, 1895*
6. *गोरखनाथ, गोरखबानी, नाथ साहित्य संग्रह, वाराणसी: नाथ ग्रंथमाला, 1920*
7. *मत्स्येंद्रनाथ, नाथ साहित्य, लखनऊ: नाथ ग्रंथ प्रकाशन, 1930*
8. *चर्पटनाथ, नाथ साहित्य ग्रंथावली, वाराणसी: नाथ साहित्य निकेतन, 1935*
9. *अब्दुर्रहमान, काव्य संग्रह, मुल्तान: प्रिंटिंग प्रेस, 1067 वि.*

10. कबीरदास, कबीर साखी–संग्रह, नीलकंठ प्रकाशन, वाराणसी, 1900
11. गुरु नानक देव, गुरु ग्रंथ साहिब, अमृतसर: गुरुद्वारा प्रकाशन समिति, 1604
12. दादू दयाल, साखी संग्रह, अजमेर: लोकसाहित्य प्रकाशन, 1580
13. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, छापाकल, लखनऊ, 1623
14. जयशंकर प्रसाद, काव्यसंग्रह, इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी साहित्य परिषद, 1920
15. सुमित्रानंदन पंत, साहित्य संग्रह, लखनऊ: उत्तर भारत प्रकाशन, 1930
16. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकाव्य संग्रह, लखनऊ: साहित्य भवन, 1935
17. महादेवी वर्मा, साहित्यकाव्य संग्रह, वाराणसी: संस्कृति भारती, 1940
18. प्रेमघन, काव्य संग्रह, कानपुर: साहित्य प्रकाशन, 1885
19. भारतेंदु हरिश्चंद्र, सर्वधर्म समभाव सम्बन्धी रचनाएँ, काशी: भारतेंदु प्रेस, 1880
20. मैथिलीशरण गुप्त, राम काव्य और अन्य रचनाएँ, लखनऊ: गुप्त प्रकाशन, 1920
21. रामधारी सिंह 'दिनकर', कुरुक्षेत्र, पटना: जनता प्रेस, 1948
22. शिवमंगल सिंह 'सुमन', काव्य संग्रह, पटना: सुमन प्रकाशन, 1950
23. डॉ. तारा चंद, भक्ति आंदोलन और संतकाव्य, लखनऊ विश्वविद्यालय, 1952
24. डॉ. विजयेंद्र स्नातक, कबीर और सर्वधर्म समभाव, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1965
25. डॉ. मदान, जायसी और भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, दिल्ली: मदान प्रकाशन, 1970
26. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्यिक विचार, इलाहाबाद: साहित्य भूषण, 1941
27. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी काव्य का सामाजिक और राष्ट्रीय संदर्भ, लखनऊ: हरिऔध प्रकाशन, 1930